मृत्युदंड: उचित या अनुचित?

परिचय

यह एक प्रचलित अवधारणा है कि समय के साथ दंड विधान भी अधिक नरम होते जाते हैं और क्रूरतम प्रकृति की सजा क्रमशः चलन से बाहर हो जाती हैं। यह धारणा इस बुनियाद पर टिकी है कि मानव समाज निरंतर सभ्य होता चला जाता है और एक सभ्य समाज में कोई ऐसा कानून शेष नहीं रहना चाहिये जो उस सभ्यता के अनुकूल न हो। फाँसी की सज़ा को भी इसी कसौटी पर परखा जाता है।

मृत्युदंड का इतिहास

- मृत्युदंड मानव समाज में आदिम काल से लेकर आज तक उपस्थित है, लेकिन इसके पीछे के कारणों और इसके निष्पादन के तरीकों में निरंतर बदलाव आया है।
- मृत्युदंड का पहला उल्लेख ईसा पूर्व अठारहवीं सदी के हम्मूराबी की विधान संहिता में मिलता है जहाँ पचीस प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड का प्रावधान था। ईसा पूर्व चौदहवीं सदी की हिट्टिटाइट संहिता में भी इसका ज़िक्र है।
- सातवीं शताब्दी ई.पू. में एथेंस के ड्रेकोनियन कोड में सभी अपराधों के लिये मृत्युदंड की ही व्यवस्था थी। पाँचवीं सदी के रोमन कानून में भी मृत्युदंड का विधान था।
- प्राचीन भारत में भी मृत्युदंड उपस्थित था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का एक पूरा अध्याय उन सभी अपराधों की फेहरिस्त को समर्पित है जिनके लिये प्राणदंड दिया जाना नियत था। मौर्य सम्राट अशोक ने पशुवध को तो तिरस्कृत किया, परंतु मृत्युदंड पर रोक नहीं लगाई। विदेशी यात्रियों के संस्मरणों से भी प्राचीन भारत में मृत्युदंड की उपस्थिति का पता चलता है।
- आधुनिक विश्व की बात करें तो एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार, अब तक 101 देशों ने मृत्युदंड की व्यवस्था पर प्रतिबंध लगा दिया है।
- साथ ही 33 देश ऐसे भी हैं जहाँ पिछले दस वर्षों से एक भी मृत्युदंड नहीं दिया गया है। लेकिन 40 से अधिक ऐसे देश हैं जहाँ आज भी मृत्युदंड दिया जाता है। इनमें मुख्य हैं- चीन, पाकिस्तान, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनेशिया और अरब देश।

मृत्युदंड के पक्ष में तर्क

- मृत्युदंड के समर्थन में प्रतिकारवादी से लेकर उपयोगितावादी तर्क तक दिये जाते रहे हैं। प्रतिकारवादी तर्क मुख्यतः प्रतिशोध से संचालित होता है। इसके अनुसार अपराधी ने जघन्य अपराध करके स्वयं को मृत्युदंड का भागी बनाया है। इसके मूल में यह तर्क है कि दंड अपराध के अनुपात में दिया जाना चाहिये क्योंकि जघन्य अपराध के लिये कमतर सज़ा तार्किक रूप से छोटे अपराध, जघन्य अपराध, भूलवश हुए अपराध और सुनियोजित अपराध के मध्य के अंतर को समाप्त कर देती है जिसके परिणामस्वरूप समाज का कानून व्यवस्था पर विश्वास प्रभावित होता है।
- इसी से जुड़ा कांट का भी स्वतंत्र संकल्प का सिद्धांत है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति संकल्प स्वतंत्र्य से युक्त है एवं वह जानता है कि समाज के पक्ष में वह जिस तरह के निर्णय लेता है, समाज भी उसके संबंध में वैसे ही निर्णय लेता है। इस सिद्धांत में यह बात निहित है कि समाज में हत्या जैसे जघन्य अपराध करने वाला व्यक्ति समाज से भी मृत्युदंड जैसे निर्णय की ही अपेक्षा रख सकता है।
- उपयोगितावादी दर्शन, जो 'अधिकतम व्यक्तियों के लिये अधिकतम सुख' के आदर्श को स्वीकार करता है, में भी मृत्युदंड के पक्ष में तर्क दिये गए हैं। पहला तो यह कि मृत्युदंड अपराधी द्वारा आपराधिक कृत्य को दोहराने की संभावना को समाप्त कर देता है तथा दूसरा यह कि दंड की भयावहता समाज में निवारक प्रभाव भी छोड़ती है और आपराधिक तत्त्व हतोत्साहित होते हैं।
- प्रबोधनवाद से जुड़े 17वीं शताब्दी के प्रमुख दार्शनिक जॉन लॉक ने भी मृत्युदंड के पक्ष में यह तर्क दिया है कि व्यक्ति के पास जो प्राकृतिक अधिकार हैं, वे तभी तक हैं जब तक वह राज्य के नियमों व दायित्वों का निर्वाह करता है। चूँकि जीवन का अधिकार भी इन्हीं में से एक है, इसीलिये कानून के अंतर्गत मृत्युदंड दिया जाना जायज़ है।
- मृत्युदंड के पक्ष में एक तर्क, जिसे जापानी मनोविश्लेषकों द्वारा आधिकारिक तौर पर पोषित माना जाता है, यह है कि इससे समाज में यह धारणा पुष्ट होती है कि बुरे के साथ बुरा और अच्छे के साथ अंततः अच्छा ही होता है। तमाम सामाजिक समस्याओं से जूझ रहे

समाजों में यह सद्धिांत व्यक्ति को सकारात्मक एवं धैर्यवान बनाता है।

- साथ ही सिग्मंड फ्रायड व कार्ल मार्क्स जैसे चंतिकों का मानना है कि किसी अपराध के पीछे व्यक्तिगत उद्यम से कहीं अधिक उत्तरदायी सामाजिक दशा व परिस्थितियाँ हैं। इस प्रकार यह प्रश्न उठना लाजमी ही है कि क्या समाज अपनी ज़िम्मेदारी से बचने के लिये व्यक्ति को मृत्युदंड दे देता है?

मृत्युदंड के विपक्ष में तर्क

- मृत्युदंड सुनाए जाने से लेकर अंततः दिये जाने तक की एक लंबी अवधि अपराधी के परिवार के लिये भी यातनामय होती है। उसकी इस यातना के लिये कहीं-न-कहीं राज्य ही नैतिक रूप से ज़िम्मेदार होता है।
- मृत्युदंड से जुड़ा एक मसला यह भी है कि अगर राज्य जीवन दे नहीं सकता तो फिर जीवन समाप्त करने का उसे क्या नैतिक अधिकार है? मृत्युदंड का प्रतिक्रियावादी चरित्र, इसे बदले की भावना से संचालित होने के लिये बाध्य करता है जिसे एक नैतिक समाज की संकल्पना में सहयोगी मानना साध्य और साधन में संबंध मानने से इनकार करना है।
- क्रूरता और नग्न हिंसा की वैधानिक उपस्थिति समाज को भी अधिक क्रूर बनाती है तथा दंड व्यवस्था की पूरी नैतिक संकल्पना पर ही प्रश्नचिह्न लगा देती है।
- मृत्युदंड पर विचार करते हुए हमें यह भी याद रखना होगा कि अनेक कानूनों एवं नियमों से संचालित होने के बाद भी प्रत्येक मानवीय कृत्य की तरह ही इसमें भी भूल की एक संभावना शेष रहती है। साथ ही न्याय प्रणाली भी व्यक्तियों के समूह से ही निर्मित होती है जिसके अपने पूर्वाग्रह और विचार हो सकते हैं, जो तमाम अवैयक्तिक कानूनों के पश्चात् भी निर्णय को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।
- आतंकवाद जैसी समस्याओं के उभरने के बाद और उन्हें समाज में कुछ धार्मिक और जातिगत समूहों से जोड़ने की कोशिशों के बीच न्यायकर्ता पर पड़ने वाले दबावों और उनके 'सामूहिक चेतना की मांग पर' क्रूरतम दंड दिये जाने की प्रेरणा से पूरी तरह इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसे में मृत्युदंड पर नैतिक ऊहापोह और गहरा जाता है।

निष्कर्ष

- निष्कर्ष के रूप में हमें यह समझना होगा कि कोई ऐसी व्यवस्था व्यावहारिक तौर पर नहीं हो सकती जो कि मृत्युदंड से जुड़े सभी नैतिक प्रश्नों का समाधान कर दे। खासकर वैसे देश जो गंभीर किस्म के आतंकवाद और हिंसा जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं।
- मृत्युदंड को कम-से-कम अमानवीय एवं हिंसक बनाने की भी पहल करनी होगी। मृत्युदंड की रिपोर्ट को सार्वजनिक करना, दंड को अधिक-से-अधिक पीड़ा रहित रखना एवं अपराधी को मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं पारिवारिक संबल पाने में सहायता करना, मृत्युदंड को बरकरार रखते हुए भी दंड प्रणाली के मानवीय पक्ष को दृढ़ करने में सहायक होगा।
- आजकल यह सहमति बनने लगी है कि अगर मृत्युदंड देना ही हो तो कम से कम पीड़ा के साथ दिया जाना चाहिये। इस संदर्भ में कार्बन मोनोऑक्साइड या नाइट्रोजन जैसी गैसों या लेथल इंजेक्शंस के प्रयोग के विकल्प को आजकल बेहतर माना जाने लगा है। भारत सरकार को भी इस संबंध में विचार करना चाहिये।
- मृत्युदंड से जुड़ी बहस अपराधी के साथ ही खत्म नहीं हो जानी चाहिये, अपितु अपराध को लेकर समाज की नैतिक ज़िम्मेदारी पर भी बहस होनी चाहिये। आतंकवाद या पाशविक बलात्कार एवं हत्या जैसी जिन घटनाओं पर मृत्युदंड की मांग सबसे मुखर होकर उठती है, उनकी जड़ें समाज की ही अन्यायपूर्ण और विभाजनकारी संरचनाओं और पितृसत्तात्मक और हिंसा के महिमामंडन से जुड़ी ग्रंथियों में होती हैं, जिनको जाने-अनजाने में समाज ही फूहड़ गीतों, हिंसक फिल्मों और राजनीतिक स्वीकारोक्ति देकर बढ़ावा देता है। इन पर चेतना, समाज को अपराध से जुड़े नैतिक उत्तरदायित्व से रू-बरू कराएगी एवं भविष्य में मृत्युदंड जैसे दंड के औचित्य को ही समाप्त कर देगी।
- अंत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा सुझाए गए मंत्र नफरत अपराधी से नहीं, अपराध से होनी चाहिये को मृत्युदंड के विषय में दिशासूचक यंत्र के रूप में देखा जा सकता है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/death-penalties-reasonable-or-inappropriate